सिंहद्वार

(वीर-काव्य)

[ग्यारहवी शताब्दी में हुए बापा रावल और
महमूद गजनी के युद्ध पर एकमर्मस्पर्शी खण्ड-काव्य]

जीवन शुक्ल

वाणी प्रकाशन
७६ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशक

वाणी प्रकाशन

७६ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रथम सस्करण

मूल्य सजिल्द २-००

अजिल्द १-५०

मुद्रक :

श्यामकुमार गर्ग

राष्ट्रभाषा प्रिण्टर्स

२७ शिवाश्रम, क्वीस रोड, दिल्ली-६

विजयशंकर शुक्ल

को—

दद्दा !

मेरी नसों में वह रहा तुम्हारा
ख़ून, 'सिंहद्वार' पर बिखरा है;
इसे अपने आशीष की अंजलि दो

—जीवन

यह कृति

हिन्दी साहित्य यों तो दिनानुदिन सांगोपांग बनने की ओर अग्रसर हो रहा है, किन्तु ध्यान से देखा जाय, तो उसमे वीर-काव्यो की अपेक्षाकृत कमी है। ऐसी दशा मे सजग प्रकाशक का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह व्यवसाय के साथ साहित्य की अधुनातन आवश्यकताओ की ओर भी ध्यान दे। यह कृति हमारी भावना का एक रूप है।

ग्यारहवी शताब्दी मे वीरवर बापा रावल ने महमूद गजनवी से किस प्रकार लोहा लिया, तत्कालीन परिस्थिति को देखते हुए उनकी इस यौद्धिक भावना मे कितना देश का गौरव और अभिमान, लाज-रक्षण और मानवीय शक्ति का गरिमामय उद्घोष था, हिन्दी के प्रतिभाशाली कवि श्रीयुत जीवन शुक्ल ने इस को एक खण्डकाव्य के रूप मे बडे ही सुन्दर ढग, विशिष्टशैली, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और प्रखर प्रतीको, उपमाओ तथा उत्प्रेक्षाओ के माध्यम से सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति देने की चेष्टा की है।

अतएव पूर्ण आशा के साथ मै कहने के लिए तत्पर हूँ कि यह कृति काव्य-जगत् मे अपना एक निश्चित स्थान बनाकर रहेगी।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

अथ

भारतीय शौर्य का इतिहास भालो की नोक से लिखा कथानक है। जहाँ के ग्रन्थो मे एक व्यक्ति के शरीर मे दस हजार हाथियो के समान शक्ति पुँज वर्णित मिलता हो, जहाँ की सस्कृति आन पर आहुति करने की प्रेरणा देती हो, जिस मिट्टी मे शत्रु से बदला लेने के लिये दूसरा शरीर धारण करने की कामना गोपित हो, जिस की नदियो में मातृभूमि का गौरव सिचित करते रहने की सक्षम लहरे बल खाती हो, जो देश लक्ष्मण का रोष, परशुराम का सकल्प, बापा रावल सा पौरुषेय व्यक्तित्व अपने आँगन मे एक साथ पालता हो—उस देश की 'वीरगाथा' को शब्दो से बन्दी बना सकना भाषा की शक्ति के परे है।

जहाँ चढते हुए सूर्य की ही आरती नही उतारी जाती, डूबते हुए मार्त्तण्ड को भी अर्घ प्रदान किया जाता हो, वहाँ की वीर-गाथाओ का मूल्याकन भी वीरो की जय के आधार पर कम नीति, धर्म, सस्कृति की रक्षार्थ जूझने के कृत्य पर अधिक हुआ है। यदि ऐसा न होता तो अकबर से पराजित राणा प्रताप, सिकन्दर से हारे पुरु के गौरव वर्णन अधिक न मिलते। कला को व्यक्तित्व का तेवर ललकारता है व्यक्ति की जीत या हार नही। पराजित व्यक्तित्व समाज के लोगो की सहानुभूति पर सहज ही अपना अधिकार पा लेता है, उसका युद्ध-कौशल आन पर प्राणोत्सर्ग करने का तेवर उसे गाथाओ के हार मे पिरो जाता है।

जिस देश की वीरता महाभारत कहाती हो, अर्जुन सा पार्थ, कृष्ण सा राजनीतिज्ञ-दार्शनिक जन्म देती हो, उस देश का साहित्यकार शत्रु का मूल्यॉकन कृपण के चितन से करे, उचित नही लगता। हुआ भी कुछ ऐसा ही है। एलेक्जडर और पुरु के चरित्र-वर्णन, अकबर और प्रताप के शौर्यगान तथा बापारावल और महमूद गजनी के युद्ध-वर्णन मे भारतीय

लेखक तथा इतिहासकार की सहानुभूति पुरु, प्रताप तथा बापा रावल के साथ ही अधिक रही है। आत्मगत अभिव्यक्ति अनुदारता की ही परिचायक नहीं होती आनेवाली पीढियो को भ्रमित सदेश से रोगी भी बनाती है। इसका दायित्व इतिहास लेखको और साहित्यकारो पर ही है कि द्रविड सभ्यता का कीर्तिस्तम्भ—रावण, आज भी भारतवर्ष मे हर वर्ष जलाया जाता है और मुहम्मद गोरी की जाति के लोगो से आज भी भारतीय-आत्मा शत्रु का नाता मानती है।

इतिहास लिखा तब जाता है, जब घटनाये घटित हो चुकती है; और उस पर आधारित साहित्य तब रचा जाता है, जब समाज की भावना उस इतिहास-युग को जी आती है। तात्कालिक घटनाक्रम के किसी एक पल मे भी वह पूरा युग जिया जा सकता है। इसे कवि से अधिक दूसरा प्राणी नही जी सकता। इसीलिये किसी भी ऐतिहासिक नायक की भूमिका का मूल्यॉकन उसके निजी परिवेश मे, घटनाओ के दृष्टिकोण के आधार पर करना ही न्याय सगत होता है। मैने सिहद्वार के नायक है को इसी नजरिये से देखने की कोशिश की है।

सभ्यताओ का जन्म खानाबदोशी जिन्दगी के बाद की बात है। हर बसी हुई जाति जहॉ एक ओर व्यवस्थित जीवन-दर्शन की पोषक होती है वही दूसरी ओर वह वन्यगामी जाति की तुलना मे कमजोर होती है। यही कारण था, द्रविड-आर्यो से,सैवेज-ग्रीस के लोगो मे, अरब-ईरानियो से तथा टर्को से रोम की महान् सभ्य जातियॉ पराजित हुई। आक्रमक के पास जो कुछ होता है, दॉव मे लगाने के लिये ही होता है और आक्रमेय के पास जो भी है सुरक्षित रखने के लिये। सुरक्षा गेडे की खाल की मोटी ढाल हो सकती है, पर हमला हमेशा तलवार की तरह बेपनाह-धार सा तेज ही होता है।

गजनी का अमीर द्रुतशिकनो का एक समूह था और सोमनाथ की रक्षा के लिये जूझा हर वीर शौर्य का पोषक—एक व्यक्ति ! सगठित शक्ति के पास खोने के लिये कम होता है और असगठित ताकत के पास पाने के लिये कम। महमूद गज़नी के सामने लक्ष्य था—सोमनाथ की

अपार सम्पदा और हमारे राजाओ के सामने प्रश्न था अपनी मर्यादा। यदि आक्रमक का मन्तव्य उसकी तलवार की धार मे उतर कर भगीरथी सा बहने को तैयार है तो हर(असगठित) शिव की जटा उसे रोक सकने मे असफल रहेगी।

सम्पदा या राज्य का लोभी, जाति व संस्कृति का भी शत्रु हो, आवश्यक नही। धर्म की भावोत्तेजना मे जूझा हर सिपाही देश-भक्त हो ही, जरूरी नही।

सोमनाथ भगवान शकर की अदेखी शक्ति का प्रतीक तो हो सकता है किन्तु वह पाषण की मूर्ति स्वय मे शिव-शक्ति है, इसे मानकर चलना अपने आप मे कहाँ तक तर्क-सगत है! गजनी का सोमनाथ पर आक्रमण हमारे सामने यही प्रश्न चिन्ह अंकित करता है।

मदिर का शिव किसी कलाकर की कृति ही था। हमने हर मूर्ति को साक्षात् मानकर पूजा। हमने उस पर यह आस्था पाषण-युग के सस्कारो की दुर्बलताओ के महान-रक्षक के रूप मे आरोपित की। हम पराश्रित-शक्ति के सिद्धान्त को मानकर चल रहे थे। गजनी ने सोमनाथ की मूर्ति को खण्ड-खण्ड कर मूर्ति पूजा की भावना पर वज्रघात किया। कालान्तर मे कबीर ऐसा निराकार उपासक और दयानद सरस्वती ऐसा मूर्तिपूजा-हीन आर्य-समाज की जन्मदाता पैदा न होता यदि सोमनाथ का दर्द समाज के गर्भ मे न सो जाता। मान्यताओ का जन्म एक रात मे नही होता। उनकी मृत्यु भी मार्केश की लग्न मे नही होती।

भौतिक-ऐश्वर्य, आदिदैविक के नाम पर भोगने वाले त्रिकालज्ञ के देवन-भोग का वर्णन कौन साहित्यकार करता यदि महमूद की गदा उस ओर न मुडी होती! गजनी के आक्रमणो ने भारतीय मदिरो को, जो सामती-सभ्यता के काल मे ऐश्वर्य के भोग-केन्द्र थे, निरवसन कर दिया था।

घोघा बापा रावल से महमूद गजनी की लडाई सोमनाथ के मदिर को लूटने जाने के मार्ग मे हुई। बापा एक गढी के स्वतत्र सरदार थे और

महमूद ग़जनी का अमीर !

'सिंहद्वार' का प्रारम्भ सन् १९५३ में और इसका समापन सन् १९५६ ई० मे हुआ था। मैने सोलकियो के गाथाकार श्री के० एम० मुशी से इसकी भूमिका लिखने का आग्रह सन् १९५९ में किया था। यदि वे इस छोटी सी कृति को अपने 'आमुख' मे कृतार्थ करते तो सम्भव था ऐतिहासिकता की दृष्टि से, इसकी श्रीवृद्धि अधिक होती और हम उन ऐतिहासिक सूत्रों के सदर्भ जान पाते जिनसे उन्हे रावल जैसा महान् वीर मिला । किन्तु उनकी असमर्थता हमें अतृप्ति के सागर पर छोड़कर चली गयी।

सिंहद्वार 'विमर्श' की विशेश बैठक मे पूरा पढकर सुनाया जा चुका है। आचार्य भगवती प्रसाद वाजपेयी, श्री कैलाश नाथ सेठ तथा प्रो० सुहेल कुमार परमार के बहुमूल्य सुझावो से 'सिंहद्वार' का हर गवाक्ष अलङ्कृत है। 'हल्दीघाटी,' जो कि खड़ी-बोली का आल्ह-खण्ड ही है, शिल्प तथा ध्वनि की दृष्टि से, उसके परिवेश से हटकर हिन्दी मे वीर-काव्य की रचना वैसी ही प्रतीत होती थी जैसे नेहरु-नीति से पृथक कॉग्रेस। फिर भी मैने अभिव्यक्ति के जिस कलेवर को अपनी तोतली बोली से चदन-चर्चित किया है वह काव्य मर्मज्ञो की सहानुभूति की आपेक्षिता है। यदि लघु-कृति इतिहास को कला के अवगुठन मे प्रस्तुत कर सकी तो मै अपना श्रम सफल समझूँगा।

ग्वालमैदान, कन्नौज। —जीवन शुक्ल

अनुक्रमणिका

आवाहन

ले बदल नये नेवर-तेवर,
भरले आँखों में नयी ज्वाल।
मेरे सँग-सँग चलना होगा—
लेकर खप्पर गल-मुण्डमाल।

आवाहन

झंकार, गिरा, गुंजित, अक्षर,
अज्ञान-हरणि, विद्या सागर ।
पनघट सूखे, परिसर सूखे—
सूखे मेरे सागर — बादर ।

उद्धार करो ! कांटे पथ—बन ।
उगने दो डाली—नये फूल ।
मेरी वाणी के चरणों की—
होने दो कवितामयी धूल ।

भावों के बाँध सकूं पगड़ी
शब्दों की कटि तलवार-धार ।
गति के प्रवाह में ला ! भर दूं—
मैं, जलतरंग, बारूद-ज्वार ।

भावों के कुसुम चुरा लाऊँ ।
अर्थों के चंदन लगा भाल ।
ताण्डव हो ले, शंकर नाचे
दे मेरी यति को नयी ताल ।

ले बदल नये नेवर - तेवर
भर ले आँखों में नयी ज्वाल ।
मेरे सँग - सँग चलना होगा—
लेकर खप्पर, गल-मुण्डमाल ।

आ ! हंसवाहिनी माँ मेरी
हो जा फिर केहरि पर सवार ।
दे आज त्याग वीणा पल भर—
ले - ले तू कर में खड्ग - धार ।

दे शक्ति चण्डिके ! आज मुझे
बरसाऊं अवनी पर अँगार ।
फिर से कृशानु-सी चमक उठे—
कुंठित जो असि की तीव्र धार ।

मेरी वाणी में वज्र घोल
ज्वालामुखियों का जगे खून ।
तप चुकी तवा - धरती जीभर—
आने दे जल के मानसून ।

मरने निरीह को दे पथ मे
होने दे गौतम समाधिस्थ ।
बढ़ गया देश का ऋण जन पर—
देने दे मन को रुधिर क़िस्त !

कैसा रौरव, अपवर्ग, स्वर्ग !
है व्यर्थ अहिंसा का सुघोष ।
हँस-हँसकर विष पी लेने दे—
होकर प्रलयंकर, आशुतोष ।

हम धर्म नही उगने देंगे
तलवारों के मैदान बीच ।
बोयेंगे फसल प्यार भरकर—
काटेंगे तन को सींच-सींच ।

अणु की महिमा के सजे ठाट ।
उद्जन उद्घोषण बार-बार ।
तू बनी शांति की मूर्ति मौन—
होती मर्यादा क्षार-क्षार !

ओ श्वेताभा ! पीताभ वसन
मेरी अरुणिम सौगात देख ।
पथभ्रष्ट विकासों के गढ़ पर—
है क्रांति कनातें, शस्त्र-मेख ।

जिस मंदिर मे थी देवमूर्ति
उसमें वैज्ञानिक की काया ।
बादल बन कर मंडराती है—
मानव-मन वाष्पो की छाया ।

भुजबल की ताकत हुई शेष
रॉकेट, अणुबम का युग महान् ।
भूखे रहकर भी चन्द्रलोक—
जाने को दीवाना जहान ।

धर्मो के लिए नही उठते
हथियार किसी के अनजाने ।
है स्वतन्त्रता के हामी सब—
हिन्दू - मोमिन, अंधे, काने ।

फिर भी बौद्धिकता के युग मे
है साम्यवाद, साम्राज्यवाद ।
जनरल के शासन जहाँ - तहाँ—
है कूटनीति विध्वंसवाद ।

आकाश बँट गया वादों में
भूखे कुबेर पर हैं टूटे ।
संचय है, शक्ति विकेन्द्रित है—
दो श्वेत - लाल शर है छूटे ।

वे ध्वस्त हो गये रजवाड़े
इतिहासो ने जिनको देखा ।
वह विश्रृंखलता नही रही—
जिसका इतिहासों में लेखा ।

हो रहा विश्व परिवार एक
बढ़ रही, घट रही सीमाएँ ।
सब के मन में है लगन एक—
कैसे समृद्धि का वर पाये ।

इस अमित काल के प्रांगण में
चमकाने दे अरुणाभ किरन ।
आडम्बर - अम्बर दूर फेंक—
होने दे मानव महामिलन ।

निरपेक्ष धर्म को सत्ता है
मंदिर, मस्जिद, गिरजा विहीन ।
मन भूखा है, तन नंगा है—
नैतिक स्तर से व्यक्ति हीन !

प्राचीन प्रतीकों की अर्थी
वेदी सी पड़ी किनारे है ।
पूरब-पश्चिम की मिली - जुली—
तस्वीर लटकती द्वारे है ।

खींचातानी दो पाले की
कौरव - पाण्डव का नया रूप ।
मिटती जनता है मिटे, किन्तु—
मद में डूबे है नये भूप !

अन्दर कलरव, बाहर मतिभ्रम
ऐसे दिग्भ्रम में उठा दर्प ।
टकरायी बाप्पा-ध्वनि आकर—
मेरे कानों के द्वार सर्द ।

इतिहास घोटने लगा गला
है वर्तमान के शिथिल हाथ ।
अब नहीं दीखते मुझे यहाँ—
असुरों के नाशक रमानाथ ।

इस पतित-म्लान वसुधा को लख
हो क्षुब्ध हिमालय उठा डोल ।
अब प्रलय अमर री ! प्रलय अमर—
धरती का कण-कण उठा बोल ।

फिर आज मौन क्यों बनी बोल !
कवि का अब अंतर री टटोल !
कण कण में अब विष घोल-घोल !
है आज वांछित प्रलय-बोल ।

पूर्वाभास

वह हुआ सभी कुछ धरती पर
सम्भव जिसकी कल्पना न थी।
शिव के प्रांगण में लाशें थीं–
अक्षत, रोली, अल्पना न थी!

पूर्वाभास

उस समय गगन में घिरी हुई—
थी भारत के काली रजनी ।
कण क्वणित धरित्री बोल उठी—
रे सम्हल वीर ! आया गज़नी ।

'गजनी अमीर, गज़नी अमीर'
की ध्वनि से आतंकित अम्बर ।
'घोघा' मरुथल मे अड़ा पड़ा—
पहने रजपूती बाघम्बर ।

कितनों ने मर्यादा खो दी
इस तुच्छ जान के लिए यहाँ ।
कितने असि - सरि के पार लगे—
निज मान - शान के लिए वहाँ ।

कितने ही ग्राम उजाड़ हुए
कितनों पर वृष्टि - कृशानु हुई !
कितने प्रसाद ढह गये और—
कितनी शुचि भूमि मशान हुई !

कितनी माता के लाल मरे !
कितनों का उजड़ा रे सुहाग !
कितनों की लाज लुटी उस क्षण—
कितनों का तममय था विहाग !

पलभर में अगणित ढहे दुर्ग
पलभर में टूटी देवमूर्ति ।
सचित वैभव को लूट-लूट—
असि ने की थी निज कोष-पूर्ति ।

देवस्थानों का रूप बदल
मरुथल की संज्ञा दे डाली ।
उपवन मरघट की धूल लिये—
मृत गात पड़ा उनका माली ।

जौहर के पर्व अनेक हुए
मधुऋतु में अंगारे देखे ।
जिनकी वय थी शृंगार-योग्य—
उनके मस्तक-आरे देखे ।

जो क्वाँरी थी वय-अनुभव मे
उनका परिणय विध्वंस-साथ ।
कुमकुम से जिनका भाल शून्य—
उनके सागर ने कटे हाथ ।

वह हुआ सभी कुछ धरती पर
सम्भव जिसकी कल्पना न थी ।
शिव के प्रागण में लाशे थी !
अक्षत, रोली, अल्पना न थी !

वह 'लोहकोट' था दास हुआ
मुल्तानी अभ्यागत सारे ।
'मंदिर टूटा, गजनी आया'—
हर तरफ यही लगते नारे ।

हर ग्राम उजाड हुआ लगता
गजनी ने जिसमे पैर धरे ।
जो नत मस्तक हो गये, जिये,
जो लड़े वीर, वो गये हरे ।

घोघागढ करके पार तुर्क
उत्सुक था 'सोम' ढहाने को ।
हर - प्रतिमा का कर खण्ड-खण्ड—
बुत - विध्वंसक कहलाने को ।

वह वीर अटल था निश्चय में
इसलिए टल गई बाधाए ।
वह धीर विपुल था साहस में—
इसलिए बढ़ गईं सेनाएं ।

उसने भारत की धरती को
जी भर कर खू से सींचा था !
उसके बर्बर त्योहार देख—
मानवता ने मुह मीचा था !

उसने भालों की नोकों से
मजहब का सीना छेदा था !
बुतशिकनी का ऐलान करा,
प्रतिमा का अन्तस भेदा था।

उस लोभी ने लालच देकर
जाने कितनों को मोड़ लिया।
उस कपटी ने छल-छंद फूक—
कितनों का संयम तोड़ दिया।

अब कुछ न पूछ मुझसे साथी
चल संग साथ उस देश अभी।
कण कण कह देगा निज बीती—
है अभी चिह्न अवशेष सभी।

जलते मरुथल के सिकताकण
जिनका आहत दिल दुखता है।
फलफूल-हीन हैं पेड़ शेष—
जिनका रण-कर्जा चुकता है।

शायद आ जायें नजर कही
बापा - उटनी - पद - चिह्न वहाँ
सम्भव है अभी गूजते हो—
उस 'नंदिदत्त' के बोल वहाँ।

हो सकती है अवशेप अभी
गजनी - शोणित की बूद वहाँ।
सम्भव मर्सिया बॉचता हो—
अपनी धुन मे 'मन्सूर' वहाँ ।

रावल की पगड़ी का नग भी
क्या अचरज रज में मिल जाये।
'सोलंकी' का वह ध्वस्त कवच—
सम्भव है कही नजर आये ।

भूगोल कर गयी आत्मसात
घांघागढ़ की दीवारों को ।
पर शेष अभी शोणित-मदिर—
ले प्रभावान मीनारों को ।

सौराष्ट्र प्रान्त की छाती का
यह कैंसर कैसे जायेगा ?
मैंने तो सिर्फ पुकारा है—
आगत कवि ऊंचा गायेगा !

महमूद

बाधायें देती थी साहस को दाने,
उसको असम्भव थे, सम्भव कर जाने।
जर्जर प्रतीकों का शत्रु इकलौता था,
आश्रित को सुख के सपनो का न्योता था।

महमूद

विशाल वृक्ष चूल्हे पर उगा हुआ,
'सुबुक्तगीन' ने स्वप्न में देखा।
अचरज की आँखों से पढ़ने लगा—
आगत के आमुख का लेखा।

उसी समय कानों से रव ये टकराया,
'गजनी के उपवन में एक फूल आया।'
'वाहिन्द' का मूर्ति-मंदिर स्वयं ही गिरा,
खुशियो से अमीर का आँगन था घिरा।

महलों में रंग-नाच बादल सा छाया,
ग्रहों ने बताया लो महापुरुष आया।
होगा सम्राट् बड़ा मूर्ति का विरोधी—
पौरुष में विपुल, दयावान, व्यक्ति-क्रोधी।

होनहार पादप के चिकने से पत्ते,
उड़ते है अम्बर में संशय के लत्ते।
जन्म से विलक्षण हों इंगित ही जिसके,
आँखें गड़ा बैठा इतिहास मुख उसके।

बढ़ने लगी नवोदित सूरज की काया,
धरे हुए काँधों पर बादल की छाया।
बिजली की कौंधन, चौमासे का सीना—
टकराती धारों पर इठला कर जीना।

अक्षर से भेट नही, युद्ध का खिलाड़ी,
दुश्मन के आँगन मे लोना-पनवाडी।
रूप की पैठ का उजडा व्यापारी था,
अंधे विश्वासों का दुश्मन, उपकारी था।

बडा हुआ तपने लगा जेठ का सूर्य
आये दिन बजने लगे खेतो मे तूर्य।
साहस मे, शक्ति में, सब में बेजोड़ था
वैचारिक सरिता का जबरदस्त मोड़ था।

बाधायें देती थी साहस को दाने
उसको असम्भव थे, सम्भव कर जाने।
जर्जर प्रतीकों का शत्रु इकलौता था
आश्रित को सुख के सपनों का न्योता था।

नारी नरपुगव के जीवन में श्रद्धा थी
बाह्य की मांसलता अंतर में वृद्धा थी।
न्याय महमूद की आँखो में जीता था
फैसला अपराधी-साँसों को पीता था।

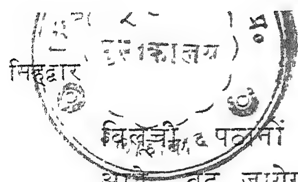
निर्धन पर ममता थी. धनिकों पर छाया
ज्ञान और चितन के ज्वारों की काया।
'फ़िरदौसी', 'अलबरूनी', 'उजारी' का चेरा
कवियो, विद्वानो से भरा हुआ डेरा।

सेनापति, शासक था, युग का निर्माता
धन की अतृप्त तृषा, शोणित से नाता।
सोने की तृष्णा थी भारत ले आई
बुत के विध्वंसक की पदवी थी पाई।

मुस्लिम में सुन्नी था कट्टर इस्लामी था
मजहव के पहले मानवता-हामी था।
ईद की रात थी चाँद रूमानी था
होठों पर मदिरा थी, आँखों में पानी था।

नूपुर स्पदित थे, वाद्यों में कम्पन था
बाहे भर बाहों में मिलने का क्षण था।
सोने का काजर था, आँखों की कोर में
मणियो के दाने थे, पंछी को भोर में।

महमूद का आज 'सुलेमान' में डेरा
तराई का पाट था सेना ने घेरा।
आज की ईद मिली नूतन तरुणाई है
लहरों के काँधे चढ़ी ऊर्मि इतराई है।



खिलजी, पठानों का संगम अलबेला
आगे बढ जायेगा कल को यह मेला।
सोने के सिंहासन बैठा नर-वीर था
कटि में कृपाण, तूणीरों में तीर था।

ईरानी कालीन, रंग नूरानी था
पगडी मे जड़े हुए लाल मे पानी था।
बादल मे बिजली, बिजली मे पानी था
अमीनुद्दौला महमूद सैलानी था।

देख कर ईद का उत्सव तराई में
मूर्ति के तोड़क का गर्व हँसने लगा।
आकृति में मिश्रित था
चिंतन - उल्लास - भाव—
समय के धीरज का बाँध धंसने लगा।

लश्कर शूरों को, बोला शार्दूल-नर—
मेरी इच्छाओं के पूरको !
ईद यह मुबारक हो।
खाली हो चुकी है पीठ—
ऊँटों की, घोड़ों की,
रत्नों से, सोने से, चाँदी से, मणियों से।
कूच फिर करना है—

आज उसी भारत को,
जहाँ के वीर, तलवारों पर जीते है।
पूजते पत्थरों को, आपस में असंगठित,
कुल की मर्यादा के झूठे दम्भ पीते है।
जाँनिसार साथियो !
खुदा के वंदो ! !
चलो, भर लाये,
घोड़ो की जीनें,
हाथियों के हौदे,
ऊटों की काठियाँ।

और—
तोड़ कर मदिर सोमनाथ का
लिखदें, 'फिरदौसी', 'अलबरूनी' की पुस्तक में—
'हम है वुतशिकन'।
देखना है, हिन्दुओ के विश्वास का पुतला वह
मेरा क्या करता है ?
बीन बीन तोड़ूँगा भारत के मदिरो को।
मंदिर-प्रकोष्ठों में
अनंत धन सचित है।
वीर बिलूचियो ! पठानो।

प्रस्थान करो, भारत की राहों को,

मेरी दुआ है साथ, इकबाल पैगम्बर का,
छाया है खुदा की नग
पूरी करो चाहो को।
ईद मुबारक हो!
मन्सूबे पूरे हो—आमीन!'

साहस नही था—
चेहरे मुर्झा जायें,
हौसला सोया रहे।
उखड़ते तम्बुओ ने
घोड़ों पर लदते हुए कहा—
"चलो, लूट कर लाओ,
मेरे आंगन मे धरो,
मेरी आँखो का दर्द
हल्का हो लेगा।
सोने की प्यास मिटती नही
उसमें, जो दुनिया को सहता है।
स्वयं धूप में जलें, ओस मे जुड़ाये
आओ हम सोना भर लायें।"

महमूद के हाथी के हौदे पर धरी गदा
तलवार से बोली-
'तुमने तो काटा है
केवल उन माथों को

शत्रु का जिनमें, गर्व मंडराता है।
और मैंने !
तोड़े है शीश उन प्रतीकों के
चेतन मानवता का विश्वास जहाँ बंदी है।'

आँखों में नीर भर
आँचल मे दुआएँ ले
बाले कनखियो में दीप,
गोद पुचकारती,
मौन पुतलियो में
सूरतें उतराती,
देने लगी बिदा—
अपनी ही आँखें, अपनो को।
सरकने लगी घाटी से भीड़
बनने लगा पलकों में
सपनों का नीड़।

सेज की सिहरन
बीता इतिहास।
काँप रहे मन का
बूढ़ा विश्वास।
इतना था पास।

जवानों से खाली थे आँगन

बाट जोहने की जोगिन छतें,
खिड़कियाँ ।
काट काट दौड़ने वाले बादल
दुआएँ माँगते जुड़े, - हाथ ।
ये ही रहा साथ ।

रंगरेलियाँ रीत गई
युग्म का अर्थ,
नीरवता चुन गयी ।

बच्चों को आने वाली वैभव की लोरियाँ,
दूसरी ईद माँग रही गोरियाँ ।
ढाढस यह कहाँ गया
सपना ही रह गया ।
अपनों का मोह यहीं छोड़,
अजगर सी सरक चली
ग़जनी की सेना ।

तराई सुलेमान
निज में थी सिमटी ।
मदिरा के टूटे हुए पात्रों से
आँचल गरुआये,
अनेक पद-चिन्हों की अल्पना सजाये ।
महमूद का मन्तव्य
अभी गूँजता था यहाँ

गर्जन का रोर मारुत संजोये थी ।
नूपुरों के कम्पन में
डूबे-स्पंदनों की टीस
घास पर बिखरी थी ।

मौन यहाँ भाषा है,
बोल यहाँ गूँगे है,
शब्द-स्थूलता यहाँ नही रहती ,
चाँद और सूरज से रोज कुछ कहती ।

दूर था छूट चुका-
लड़ैते कबीलों का देश, गज़नी ।
पैरो तले थी गलियाँ उस भारत की—
पंद्रह बार जिन्हे तेगों से नापा है,
सब कुछ वही था जाना पहिचाना

सिन्धु को पार किया, मुल्तान तक आया
'अजय सिह' राजा ने स्वागत करवाया ।
यही से भेजी थी बापा को पाती
था यहां तक, गर्जा वह बूढ़ा सपाती ।

बापा के उत्तर ने अगारे बोये
महमूद जब तडपा, अधियारे रोये ।
सिकता की छाती पर सूरज गर्माया
घोघागढ आँगन मे सागर लहराया ।

जंगल के गालों तक चिन्गारी आयी
अंतःपुर जलते थे अँधियारी छायी ।
डंका बना कूच का घोघागढ़ दाबा
केसरिया बाँधे सर निकल पड़ा बापा ।

सिंहद्वार

बूढ़ी दीवारों पर रक्षा का भार
ईंट ईंट जागृत है झाँकते कगार ।
गुम्वज की पगड़ी पर हीरों का ताज़—
रण में टकराने को उद्यत सौ बार ।

सिंहद्वार

बालू की छाती में धँसे हुए पाँव
आँगन के आँगन मे, गाँवो के गाँव ।
बाहे आकाश उठी रोक रही गैल,
वहाँ नही दुश्मन के पंछी का ठाँव ।

सर पर तलवारों की छाया अनमोल
पनघट पर गौने मे आयी के बोल ।
घुटनों पर चलते है मैया के लाल—
देवी के मंदिर में मनसा के ढोल ।

दरपन में देख रही व्याही निज गाल
फूल धरे चलती है भारी पग चाल ।
अंकित है प्रिय के अधराधर की छाप-
ग्रीवा में हँसती है मणियो की माल ।

बैठक़ में तलवारों, भालों के रूप
सिंहासन बैठे हैं पौरुष के भूप ।
रंगरेली बीथी मे, मदिरा के बूँद—
चाँदी के दाने है, सोने के सूप ।

मंदिर की चौखट पर भक्तों की भीड़
रागों-अनुरागों के तिनकों का नीड़ ।
चोंच मढे सोने से, हीरकनी दाब—
गाती है चिड़िया भी मलया को चीर ।

कण कण मे पुरखों की गाथा के गान
अंकित स्तम्भो पर उज्ज्वल प्रतिमान।
कीर्तिमयी पावक से भागा डर काल—
देव नहीं बसे यहाँ केवल इंसान ।

बापू की आँखो में ममता का नीर
मइया के आँचल मे सुख की तकदीर।
भाई की बाहों में ममता का खून—
अनुजा की राखी में पावन शमशीर ।

गोरी के काजल में धारों के वार
चूल्हे से पनघट तक वय का सम्भार ।
संतति से आत्मा की तृष्णा का मोह—
आँखों से आँखों का भोला व्यापार ।

बूढी दीवारों पर रक्षा का भार
ईंट ईंट जागृत है, झाँकते कगार ।
गुबज की पगड़ी पर हीरों का ताज—
रण में टकराने को उद्यत सौ बार ।

शिव का नटराज रूप, कान्हा की तान
कंचुकि में खोंसे है गूजरिया बान।
होंठों पर सुरसरि है, अंतर में प्यार—
लेने को रामनाम देने को दान।

वेदों के, शास्त्रों के ज्ञानी हर ठौर
आये है, फूले है, सुख-दुख के बौर।
हँस हँस कर काटा है, गाकर स्वीकार-
आया है द्वारे मनसिज का दौर।

देखे प्राचीरो ने वैभव के धाम
जाड़े की पूनम और जेठ का घाम।
पावस की रिमझिम में भीगा जलजात--
पाये हैं आम औ, गुठलियों के दाम।

रोये हैं बैरी के, खेतों मे पाँव
खाये है अपनों से धोखे मे दॉव।
पूछे ज्योतिषियों से आगत की राह—
सर पर लहराती है संस्कृति की छॉव।

कुरुक्षेत्र याद इसे, मथुरा भी याद
सुनता बढ़कर ये दुखिया फ़रियाद।
पौदो की फुनगी पर दानो का बोझ—
लाया है कॉधों पर ऋतुपति को लाद।

खोलो पट, दिखने दो प्राँगण-तस्वीर
तोरण के आँगन की बंकिम प्राचीर।
बापा की बैठक में वीरों के जूथ—
धारे कटि-तेगा, तूणीरों में तीर।

प्रांगण

बैठक में बैठे थे चौहानी शूर-वीर
ग़ज़नी के हमले का मसला भी पेश था ।
धर्म पर गुर्ज थी, सॅस्कृति पर टापे थी,
संकट में घोघागढ़, मुश्किल में देश था ।

प्राँगण

बापा के आँगन में वीरों का मेला था
अवसर था प्राणों पर अग्नि धर लेने का।
उनको निमत्रण था, एक नही सौ-सौ दफे—
वक्त था याद जिन्हें अपने सर देने का।

ऊँचे सिहासन पर आसन था रावल का
सामती शोभा से बैठक उजियाली थी।
दमक रहे चेहरो के लाली का तीखापन—
आँखो में होली थी, मन में दीवाली थी।

मुखर हुआ अंगों की शैली में बाँका।पन
अधरों के द्वार पर अमावस का का पहरा था।
मन की परितप्त व्यथा चितन में खोयी थी—
अनुभव-अभिव्यक्ति की पलको में ठहरा था।

धर्म की इज्जत पर पौरुष की ठोकर थी
देव की रक्षा को भक्त अकुलाया था।
आस्था के मेघों ने, तर्कों को ग्रहण लगा—
शोणित के अर्घो का तर्पण करवाया था।

बापा ने आँख भर देखा हर क्षत्री को
चेहरो पर सब के उत्सर्ग की छाया थी ।
सोमनाथ सबकी ही आँखों की पुतली था—
सब के ही अंतस मे एक भाव काया थी ।

रोम-रोम शक्ति का तूणीर था साक्षात्
पोर-पोर धारे था दुधारी निज मान की ।
बख्तर मे बद थी हज़ार कर वाली मौत—
हो खोज रहा व्यग्रमना जैसे जय जान की !

थी कलँगी में काँति की बंद सौदामिनी
कटि की कृपाण पैग भरने को आतुर थी ।
अधरों तक आ-आ रुक जाते थे युद्धगीत—
राणा-दृग ऊर्मियाँ ज्वलित क्रोधातुर थीं ।

बाहर की मारुत ने दाढ़ी के बालों को
ऐसा ललकारा, हर बाल लहरा गया ।
आयु में बृद्ध हुई घोघा की काया पर—
शम्भू के ताण्डव का लास्य छहरा गया ।

बैठक में बैठे थे चौहानी शूर-वीर
ग़ज़नी के हमले का मसला भी पेश था ।
धर्म पर गुर्ज थी, संस्कृति पर टापें थीं,
संकट में घोघागढ़, मुश्किल में देश था ।

बीड़ा था आहुति, मर्यादा की थाली में
गौरव के बर्क वहाँ आखे मिलाते थे ।
घुटनों पर नंगी तलवारे तुरीय किये—
मूछों पर हाथ फेर, बाजू फड़काते थे ।

"लायेगा कौन वीर ग़जनी की गर्दन को"
चिह्न प्रश्न वाचक यह मौन मँडराता था।
बापा की भृकुटी मे सिकुड़ा सा जन्म-मरण—
बीड़े का पोर-पोर आँखो से खाता था !

सहसा उस रावल की भृकुटी कुछ और तनी
गरज उठा सौराष्ट्र का सिह भर रोष में।
चेतन-कर्ण, विस्फरित-नेत्र, तन गई नसें—
शायद ही शिथिलता रही हो तन-कोष में ।

सिहनाद गूँजा, शब्द खोये दिशाओं के
"क्षत्री के लालों ! ललकार तुम्हें देता हूँ ।
अवसर है, धर्म है, जाति है सिहों की—
मेरा बुढ़ापा है, ढाल तुम्हे देता हूँ ।

अस्सी का हुआ हूँ मैं पंडित के पत्रे में
किन्तु भुजदण्डों से पहाड़ भाँज सकता हूँ।
महमूद क्या आये सज-शैतान भी जंग में—
उसके भी पौरुष की आँख राँज सकता हूँ।

वीरों ! भरोसा है, झूमझूम खेलोगे
अपनी ही धरती है, अपना ही पाला है।
अपने ही हाथों है दुश्मन को प्राण-दण्ड,
अपनी ही ग्रीवा मे मुण्डो की माला है।

सावधान रहना है लेकिन हर मोहरे पर,
ग़ज़नी के वीरो से पहली लड़ाई है ।
मारना बीन-बीन, मरना पर कट-कट कर,
अपने सोमनाथ पर पहली चढाई है ।

हिम्मत है किस की जो मंदिर की ओर बढ़े,
और फिर, रहते हुये घोघागढ़ वीरों के ?
धनुपों पर तुम्हारे शेरों के तूर्य लुटे,
मोड़ोगे, गर्व है, गौरव तूणीरो के ।

रोम-रोम तीरों से भेद दम्भ बैरी का
ग़ज़नी-अमीर के सवारों को मोड़ दो ।
आया है तोड़ने "एक लिग" प्रतिमा को,
पहले वह तोड़े, उन हाथों को तोड़ दो ।

वीर कब जिया है उम्र तजकर तलवारों की
सूर्य कब तमसा के द्वार का भिखारी है।
क्षत्री वही है, जो शोणित से स्नान करे,
जो युद्ध में जूझे, वही स्वर्ग अधिकारी है।

दौलत से मोला है उसने राजपूती को
कौड़ी से कलॅगी का शौर्य उतराया है।
जो युद्धको 'जोवन की शान' तक कहते थे—
ले अरि की सौगात, निज देश लुटवाया है।

आपस में तिल के लिये शीश जो देते थे
वो शीश के लिये निज लाज दे बैठे है।
खलती पताका जिन्हे बैरी की स्वप्न में,
ग़ैरत में जलकर भी, शेर - रज्जु एठे है।

विश्व की तवारीख साक्षी रहेगी सदा
भारत के कुबेरों को भिक्षुक ने मोला था।
दर्प जिन्हे रहता था अपने परदादों पर—
उनको महमूद ने कौड़ी में तोला था।

मान जिन्हें प्यारा था प्रॉणों से बढ़कर भी,
मातृ-बलिवेदी-कीर्ति-दीपक जला गये।
पंचतत्त्व-ऋण से वो उऋण होने के लिये—
क्षुधिता रणकाली की कपाली समा गये।

गौरव से भर दिया आँचल उस मृत्यु का
जिसका सत्कार रुदन से ही नर करते थे।
बढ़कर अगवानी की आफ़त-अवरोही की—
जिससे वो देवलोक - वासी भी डरते थे।

है धन्य वो हो चुके भारत - कुलवंत वीर
किन्तु नर - मिटने की अब पारी हमारी है।
काम है धर्म का, देश, जाति का, अपना भी—,
मारेंगे - मरेंगे, रण-प्रतिज्ञा हमारी है।"

रावल की ध्वनि को दुहराया दीवारों ने
बैठे-वीरों ने 'जय एकलिग' बोल दिया।
सजग-सहस के पोत का मस्तूल तान कर—
झंझा के सागर मे शक्ति-यान खोल दिया !

राणा के सिहनाद करते ही, अवनि-व्योम—
थर-थर-थर काँपे, दिशाएँ हिलने लगी।
इन्द्र के पिनाक की विशाल दो शिराएँ दृढ़—
खीचें प्रत्यचा बिन यूँ ही मिलने लगी।

तप्त उर हो उठा मलयागिरि - मारुत का
घोघा की क्रोधमयी अंतस-उसाँस से।
साँय-साँय करता पवन गतिमय फिर हो उठा—
भस्मासुर ही गया बिन वर के प्रभाव से !

बाप्पा की सभा का छोटा सामंत एक
कटि से कृपाण-काढ़ वीरोचित बोल उठा।
"गरदन कट जायेगी किन्तु झुक सकते नही"—
वाक्य के गूँजते दिगत - प्राण डोल उठा।

एक ही स्वर में दुहरायी प्रतिज्ञा गई—
"प्राणों को बेचेंगे केवल तलवार से"।
युद्ध में मारना या मरना ही धर्म है—
मतलब क्या क्षत्री को जीत या हार से।

युद्ध है एक मंजिल विरोधी विचारों की
नीति के साथ जहाँ अस्त्र टकराते हैं
ताक़त में, छल में, जो भी जहाँ श्रेष्ठ सिद्ध,
उसकी जय होती, सूर वीरगति पाते हैं।

जन्म है यहीं से ज्ञान की भाषा का
युद्ध-अवरोध गति सोती जगाते हैं।
लेता है जन्म यहीं मानव का महामरण,
पौरुष की खेती में अंकुर उग आते हैं।

अवसर था, चारण ने वीरोचित छन्द पढ़े
मूँछों के बालों पर गुमान हँसने लगे।
त्यक्त से पड़े थे शस्त्र उनका सम्मान हुआ—
शांति को आक्रमण के सर्प डसने लगे।

द्वारपाल बोला 'जय' आकर वीरबापा की,
"भेजा महमूद का एक दूत आया है"।
दौड़ गया बैठक की नस-नस में गर्म लहू—
प्यासे के होठों तक सागर चल आया है!

"लाओ, उस दूत को मेरे इस प्रांगण में,
नौकर से मालिक की हस्ती को आकूँगा।
ग़ज़नी के अमीर को कहला दूँ, आये तो—
पगड़ी में टापों के तारों को टाकूँगा।"

घोघा के अनुचर के साथ साथ आये दो।
एक था राजदूत औ' दूसरा दुभाषिया।
'मसऊद' और 'तिलक' थे नाम उन पुरुषों के,
उनकी उपस्थिति ने ज्वार-सिंधु लादिया।

वेष से क्रूरता टपकती थी मसऊद के
आनन का रंग था अरुणाभा लिये हुए।
थी साथ में थाल भी ढकी हुई मणियों की,
चलता था दम्भ की मदिरा सी पिये हुए।

साथ में था एक देशी दुभाषिया दूत के
सुजाति, निज-धर्म का मोह नहीं जिसके था।
चाटुकार गर्वित था—'गरुई मलिकाई पर',
जागे देख घृणा नहीं ? ऐसा दिल किसके था !

भारत में विभीषण का दर्जा ही ऊँचा है,
न्याय और धर्म से मान्यता दिलाई है।
आज उस पौराणिक गाथा के नायक की—
काली तस्वीर, यहाँ जीवित हो आई है।

आँख भर देखा उस मसऊद ने वीरों को
स्वागत में आँखो के अँगारे चल आये थे।
जैसा सुना था, आज देखा भी वैसा ही,
दुभाषिये तिलक ने उचित ही गुण गाये थे।

बढ़कर मसऊद ने आदाब किया राणा को,
संधि मे भेजा हुआ थाल भेंट कर दिया।
दुभाषिये तिलक ने वह संधि - पत्र बाँचा जब,
शब्दों ने अंतर का दूना रोष करदिया।

'प्रभास' तक जाने का मार्ग चाहता था शत्रु,
घोघागढ बीच-हो, बात लगाने की थी।
ठोकर से थाल मार भेंट छितरा दी सब,
घटना ये आग मे घी के पड़ने की थी !

काँप गया गुस्से मे रावल का रोम - रोम,
पकड़ उठे बृषभ-कंध संधि की पाती से।
लाल-लाल आँखे ज्यों दुपहर का सूरज हो,
भेंटे भी काल अगर, बोलो किस छाती से !

'अपने महमूद से जाकर बोल देना तू,
शक्ति हो तो, माँगे वह राह तलवार से।
या तो वह जायेगा घोघागढ पारकर,
या तो फिर होगा अंत मेरा संसार से।'

सुनकर चुटीले वैन राजदूत कह गया—
वो क्या कुछ जाने राम, अपनी जुबान में।
भाव कुछ चेहरे का ताड़ एक वीर ने—
मूठ पर लगाया हाथ, कटि की कृपाण में।

'राजदूत शत्रु और मित्र का है एक रूप,
इससे सम्मान सहित कूच कर जाओ तुम।
युद्ध की तैयारी में रत होने के लिये,
अपने अमीर को संदेशा सुनाओ तुम।

एक ही तरह जान उसकी बच सकती है,
जाये लौट उल्टे पग, सोमनाथ छोड़कर।
अन्यथा कहाऊंगा मै ही बुतशिकन-काल,
तोड़े जो देव-मूर्ति, उसको ही तोड़ कर!

वीर नही करते है संधि कभी दुश्मन से,
आन पर मिटना, वीरता की निशानी है।
तज स्वाभिमान मान मिलता नही दुनियां में,
क्षत्री का जन्म, एक युद्ध की कहानी है।"

भेंट की पाती को दे उत्तर जुझारू आज।
बापा ने भारत का गौरव दरसा दिया।
चारण ने वीरोचित शब्दो की धरती पर—
अपने कवित्व का रस-बादल बरसा दिया।

राजगुरु नंदिदत्त बोले कर बंद आँख—
"मेरा सोमनाथ, सर्वशक्ति का प्रदेता है।
'गंगसर्वज्ञ' का उसे चमत्कार ज्ञात है नहीं,
जो शिव से आशीष - पुंज नित्य नये लेता है।

उन्मीलित करेगा नेत्र तीसरा शिवा जब,
कांपेगा हिमालय, भूचाल टकरायेंगे।
एक महमूद क्या, आयें हजार सज 'पाटण' पर,
क्षार-क्षार होंगे, वंश-चिह्न मिट जायेंगे।

भारत वह देश जहाँ राम-कृष्ण जन्मे थे,
इसका हर कंकण भी पवित्र सेनानी है।
त्याग में, तपस्या में, ज्ञान में, दर्शन में,
जग का सिर-मौर, वीतरागी, सैलानी है।

बापा ! विश्वास-पूर्ण, मारोगे बीन-बीन,
ग़ज़नी का अमीर - रण लुंठित गिरेगा ही।
त्रिशूल सोमनाथ का साथ में तुम्हारे जब,
शत्रु की साँसों का दम्भ-तिमिर तिरेगा ही।

ब्राह्मण हूँ, भेजूँगा अपने कुलदीप को,
जाकर बलिवेदी पर ज्योति - फैलायेगा।
तपेगी जहाँ पर भी काया इन वीरों की,
चंदन के बादल सा, ठौर बरस जायेगा।

बोलो 'जय एकलिंग', बोलो 'जय सोमनाथ'
उनके पिनाक का प्रभाव कष्ट टालेगा।
मारना पड़ेगा नहीं तुमको शिव-द्रोही को,
उसको स्वयमेव शम्भु, भस्म कर डालेगा।

देखूँगा. कल की उषा कौन-रवि लाता है,
और किस दिशा के काँध जाती है पालकी।
कौन-सी सूर्यमुखी, परिमल की अंजलि-भर,
अर्चना सजाती झुक, पल्लव, तरु, डाल की।"

स्वप्न

प्राप्त भौतिक जग का अप्राप्य
अचेतन की अतृप्त अभिलाष।
प्रतीकों में पाती अभिव्यक्ति–
मनुज के मन की जलती प्यास।

स्वप्न

दिवा का क्लांत कलेवर सुप्त
उड़चला अन्तर - मानव जाग ।
गुलालों के कोहरे के बीच—
सुनाई पड़ता मधुरिम फाग ।

नियति के घेरे में अनजान
घिरे रावल के वीर विचार ।
स्वप्न की दुनिया को तिरचले—
व्यथा मे डूबे पोत - कतार ।

कही माँगों पर उड़ती धूल
कहीं स्वानों का क्रंदन घोर ।
कही पर ढाये हुए प्रसाद—
कही जंगल में नाचा मोर !

सुनहरी किरनों के सँग खेल
विकस कमलों सा अमल-उदार ।
अमा में स्वप्न लोक के गीत——
गा उठे मानव मन के तार ।

दिवस की विषम वेदना मिली
स्वप्न के प्राँगण में धर रूप ।
खोजने लगा हृदय संधान—
कल्पना लिये व्यथा के सूप ।

अगोचर में गोचर के प्राण
चल रहे बिना पैर के जीव ।
जीतते थे सपनों में जंग—
पार्थिव दुनियाँ के नर-क्लीव ।

प्राप्त भौतिक जग का अप्राप्य
अचेतन की अतृप्त अभिलाष ।
प्रतीकों में पाती अभिव्यक्ति—
मनुज के मन की जलती प्यास ।

घिरा था बापा दुश्मन-बीच
हो रही दोनों कर तलवार ।
उखड़ने लगे शत्रु के पैर—
रक्त में सनी चमकती धार ।

सररसर वायु-अश्व गतिवान
निलय की शम्पा के कटुबोल ।
रजनि के घूँघट का परिहास—
कर रहा मलय-तुर्क बेमोल ।

निशा के माथे का अहिवात
कुमुद के अंदर का मधुहास ।
दिशाओं के आँगन का दीप—
निलय की बगिया का मधुमास ।

शम्भु के केशों का शृँगार
जाह्नवी का दरपन अनमोल ।
किसी त्यक्ता का धीरज मीत—
किसी कवि की वाणी का बोल ।

मनुज के मन की वह चिरशांति
विभव के जीवन का संसार ।
लुट गया समय-मेघ के हाथ—
किसी बिरहिन का मन-उपचार ।

झर पड़े अरि-अम्बर-दृग देख
छिपा बनमाली का आलोक ।
धरा के घाव हरे हो गये—
सोम का अतिशय शोक विलोक ।

दैत्य से ग़ज़नी के वे वीर
तैर कर लड़ने को तैयार ।
किन्तु सम्मुख हय-विना सवार—
कौन दे बढ़ कर अरि हुँकार ।

काटता रुण्डों के धड़-अंग
पाटता जाता खाली भूमि ।
शवों की नौकायें तिर रही—
माम के भक्षी उड़ते झूम ।

किसी की वास्तुकला की भेंट
किसी के अंतर के उद्‌गार ।
किसी के जीवन का पुरुपार्थ—
भक्त के मानस का उद्धार ।

वही भव के स्वामी का द्वार
खचित अज्ञात हृदय के भाव ।
जिसे हर-नर ने वर विश्वास—
सौंपदी अपनी जीवन—नाव ।

जहाँ वैभव-सम्राट् कुबेर
रहा करते थे आठो याम ।
और जिसके प्रताप से यहाँ—
सुबह होती थी आती शाम ।

सभी की खाली झोली भरी
न लौटा कोई हृदय उदास ।
उन्ही के द्वारे निज-कर जोड—
गया ग़ज़नी बन छली विनास।

कहो कैसे लौटाता रिक्त
हृदय औघड़दानी-अवधूत !
तुर्क की गयी कामना बरी—
रहा बमभोला-भोला पूत ।

अडिग अभिलाषा का बल देख
मगन हो उठा 'सोम' का नाथ ।
मूर्ति के विध्वंसक पर रीझ—
टूट कर गिरा देव का साथ ।

सम्हल कर जगा स्वप्न में शौर्य
दृष्टिगोचर हो उठा प्रताप ।
अलौकिक ज्वालागिरि फट पड़ा—
झुलसने लगा दम्भ का आप !

लिये कर में त्रिपुरारि त्रिशूल
फूँकते हुँकारों में मंत्र ।
डमडड्ड् डमरू का रव-घोष,
जोगिनी जगीं, जगे सब तंत्र ।

मार कर गिरि-गह्वर-सर-झील
चीर आकाशों की प्राचीर ।
साज कर सेनाएं आ गये—
देव, किन्नर, गंधर्व, समीर ।

और देखा, सहसा कि हिमाद्रि—
हो गया 'मौरध्वज' सा खण्ड ।
वर्फ के पर्तों में जो दबी—
वह्नि के कर अभूत कोदण्ड !

गिर गया विश्वासों का चित्र,
हो गया आस्थाओं का अंत ।
इंद्र के निष्कर्षों का विफल—
हो गया, मनसिज-हृदय बसंत ।

तिलमिलायी घोघा की आँख
क्षुब्ध हो उठा हृदय सब देख ।
सृष्टि के साथ मिटेगी नहीं—
खिंची मानव- मस्तक यह रेख ।

ब्रह्म-वेला के सपने सदा
सत्य होते हैं, उर में सोच
लगा लंगड़ाने बल का पैर—
लग गयी असमय पौरुष-मोंच ।

उसी क्षण शैया का कर त्याग
चल पड़ा शिव-मंदिर की ओर ।
चाँद का ढ़लता देख प्रकाश—
व्यथित बौराया दीन-चकोर ।

न जाने किस बगिया का कोप
लूट कर लायी थी वह बात ।
सुबह कितनी है शांत समीर,
कठिन से जिस की बीती रात ।

डूबते ताराओं से सपन
क्षितिज की सीमा के उस पार ।
नयी स्फूर्ति भर रहे प्राण—
शून्य की सीमा के इस पार ।

सप्तऋषियों के आश्रम दूर,
लग रहे धूमिल मंजिल-ग्राम ।
डिगा सा लगा ध्रुवा का धीर,
उड़चले पछी नूतन-धाम ।

किसी योगी की खुली समाधि,
मिला कोटर-पति को विश्राम ।
कर्म के स्नातक धर्म-प्रवीन—
लुटा छलिया मन का धन-धाम !

किसे था मालूम कल का भेद
किसे था परिवर्तन का भान !
आज की ही उलझन थी बड़ी—
भविष्यति का मन को कब ज्ञान !

सदा बन्जारे सा यह हृदय
भटक कर खोजा किया निवास ।
जहाँ है निर्माणों का देश—
वहीं ले पहुँची नियति विनाश ।

आज की ऊषा का रग लाल
लगा राणा को रुधिर-गुलाल ।
हृदय में जलती होली लिये—
द्वार मदिर के गया बिहाल !

सोचता जाता था नरसिंह
कहूँगा क्या शिव से कर जोर ?
किस लिये असमय आया द्वार-
हृदय में कैसा विह्वल रोर !

किन्तु सहसा आया मन-ध्यान
रात के सपनों का शेषांश ।
अपशकुन की शंका से ग्रस्त-
चाहने लगा दया - भिक्षांश ।

कंठ भर गाया रूद्री - पाठ
पढ़ा फिर शिव - महिम्न् - स्तोत्र ।
किया संकल्प वहीं पर बैठ-
नाम औ' धाम, जाति-पढ़ गोत्र ।

"न जीवन छोड़ूँगा - महमूद
काट कर लाऊँगा वह हाथ ।
और पैरों से रौंदूँ उसे-
गर्व के काँधो पर जो माथ ।

न कर पाऊँगा यदि प्रॉण-पूर्ण
न जीवित लौटूँगा इस द्वार ।
फैसला करने मै चल पड़ा-
नहीं तो वो, या में उस पार"

बिदा

बहनों के हाथों में रण-कंगन-राखी थी
माँओं के आँचल, आशीषों की साखी थी।
गोदी के लालों में कौतूहल बोला था
ऐसी गम्भीर-विदा, शेष-फण डोल।था।

बिदा

धरती ने सूरज को आँचल में ढाँक लिया
बादल ने नयनों से इंगित को आँक लिया ।
दिन भर की थकी हुई बाती अँगड़ाई थी
बाहों को बाहों की भूली सुधि आई थी ।

जूड़े में नखतों को यामिनी सजाये थी
सृष्टि सरा डूबी नीहारिका नहाये थी ।
निर्वसना सागर की लहरें इतराई थी
कूलों के अधरों पर जल-परियाँ छाई थी ।

लौटे थे थके हुये पंछी परदेशो से
कमलों मे बंद भ्रमर, पाती संदेशों से ।
थे नूपुर में स्पदन, कम्पन केयूरों में
काजल में बिजली थी, पानी था कोरो में ।

फूलों के माथों पर शबनम पहरा था
शूलों के सर पर अधिकारों का सेहरा था ।
कल की आशंका ले, आज रूप सोया था
बूद बूंद पीने तृप्ति-मन खोया था ।

निद्रालस चेतन था, अचेतन का भोर हुआ
झीगुर के आँगन में गुँजन का रोर हुआ ।
विपधर- फुफकारों सा सन्नाटा छा गया
मारुत वन-पौदों से टकरा कर गा गया ।

वायु मिली पेड़ों से, मानव के जीने को
दाहो के पर्वत से अश्रु मिले पीने को ।
उजियारे पाख की वृद्ध सी जुन्हाई थी
नीद भरे रज-कण पर टोना कर आई थी ।

सोये थे सुख-दुख-के भावों के छौने भी
तोड़ रहे नखतों को साधन में बौने भी ।
सोयी थीं तलवारे, रण-दूल्हे सोये थे
बहुअर भी सोयी थी, चूल्हे भी सोये थे ।

घूँट-घूँट पी गई बाती अँधियारे को
थी ईंगुर स्नान किये, ब्याही उजियारे को ।
श्रम-जीवी जीवों ने अपना घर छोड़ दिया
कमलों की नालों सा, बाहुपाश तोड़ दिया ।

नदिया के पानी में सोना उतराया था
नूतन इतिहास लिये नया दिवस आया था ।
लेकिन हर रश्मि पर गज़नी की छाया थी
रंजित अभिसारों में डरी हुई काया थी ।

बेसर के मोती का पानी घबराया था
मन में नवकम्प लिये नया प्रात आया था।
घोघागढ़ तोरण पर सेना की हलचल थी
अंत.पुर प्राँगण में मावस सी प्रतिपल थी।

रावल ने कुल-गुरु को अत पुर सौंप कहा—
"अब से तुम्हारा धर्म, अव तक जो नही रहा।
साथ जो हमारे चले, वीरगति पायेगे
चढ़कर तलवारों पर शम्भु-धाम जायेगे ।

मेरी जब काया यह टूक-टूक होलेगी
अंत.पुर प्राँगण में जौहर वह्नि डोलेगी।
दे देना आगी तुम वीर ललनाओं को
अपने ही हाथों से, अपनी रचनाओं को।

नदिदत्त ! भार बड़ा काँधे तुम्हारे है
मेरा भी दाह-कर्म हाथों तुम्हारे है ।
इतना ही नही बधु, तुम को तो जीना है
'सामत' के आने तक गरल-घूँट पीना है ।

भेजा है मैंने ही उसको तैयारी में
ज्वाला-जल डाला है, वंश-बेलिक्यारी में ।
आये तो, कहना वो 'प्रभास' की ओर चले
पुरखों के गौरव सा युद्ध के बीच ढले।

इस तरह सौंप दिया गड्ढी को तोरण भी
खेतों से आँगन तक, आँगन का पोषण भी
घूम-घूम अंतिम आदेश वीर देता था
भँवरों की छाती पर तेवर से खेता था।

राजगुरु आँखों में, करुणा का पानी था
अंतर में झंझा थी, प्रश्न-सैलानी था।
मस्तक का चंदन कुछ गीला हो आया था
दाड़िम रंग अधरों का, नीला हो आया था।

धसती थी पैरों के नीचे की धरती भी
करवट सी लेती थी, भावों की परती भी।
काँधे उपवीत के धागे गरुआये थे
दृष्टि के प्रांगण में गिद्ध मँडराये थे।

मौन था नंदिदत्त, भाग्य की रेखा सा
कल का वह-पर्व, विनाश आज का देखा सा।
काली सी पुतली के निकट अरुण डोरे थे
भाषा निरर्थक, अभिव्यक्ति-पृष्ट कोरे थे।

सजते रणवीरों का कलरव अलबेला था
रोम-रोम परबी थी, अंग-अंग मेला था।
शस्त्रों के कसने की ध्वनि में गढ़ डूबा था
शौर्य का मान-चित्र, अस्त्रों का सूबा था।

माँगी जब बापा ने केसरिया पगड़ी थी
नंदिदत्त सिहर उठा, गिरा-भाव जकडी थी ।
"बापा ! यह दिन भी मुझ को ही देखना
अपने राजेश्वर का विदा-पर्व पेखना ।"

अट्टहास रावल का अम्बर को चीर गया
ध्वनि का कोदण्ड-दण्ड कानों के तीर गया ।
"रोचन-कर राजगुरु ! आशिष की ढाल दो
मेरी नर-ग्रीवा को मुण्डों की माल दो ।

एक लिंग चरणों पर अपना तनवार चलूँ
प्रतिमा-विध्वसक की सेना सहार दलूँ ।"
वह आनन उत्सर्ग की केसर से लाल था
उस धवल हिमालय सा, दृढ़ प्रतिज्ञ भाल था ।

कसे हुए दूने अस्त्र, दुहरी सी देह में
बिजली में पानी था, कौधन थी मेह में ।
केसरिया बाने पर दूध सी दाढ़ी थी
मूछों पर ऐंठन की गरिमा भी गाढ़ी थी ।

मस्तक पर राजगुरु - रोचित वह टीका था
पूरब के भाल - मार्तण्ड - बिदु फीका था ।
बृद्ध रण - दूल्हे संग आठसौ बराती थे
लड़कों के लड़के और दुहितों के नाती थे ।

शंखध्वनि होती थी उभर रहे होठों से
निकले नर, कुटिया से, महलों से, कोठों से ।
हर जवान दूने हथियारों में आया था
प्राणों की अँजलि में मौत भर लाया था ।

उधर ललनाओं के हृदयों में क्रंदन था
जो पत्थर पिघल जाये, दृष्टि - स्पंदन था ।
बहनों के हाथों में रण - कॅंगन - राखी थी
माँओं के आँचल, आशीषों की साखी थी ।

गोदी के लालों में कौतूहल बोला था
ऐसी गम्भीर बिदा, शेष - फण डोला था ।
इच्छायें नवोढ़ा की छाती को ढलती थीं
बाहर की झुलसन से अंतर में जलती थीं ।

पंगुल की बाहों में शोणित की उमसन थी
अंधों के अंतसमें सुन-सुन कर कसकन थी ।
मंदिर पुरोहित से बात नहीं करता था
पनघट जल - कूप को याद नहीं करता था ।

ज्यों स्वर्ग के आँगन में नर्क का पहरा था
आँगन तो गुँजित था, किन्तु घर बहरा था ।
मोहपाश तोड़ चली बापा की सेना थी
ग़ज़नी के प्राणों की भेंट शेष लेना थी ।

फाटक था बंद अभी, वीर सजे ठहरे थे
तोरण के आसपास गहरे से पहरे थे।
नदिदत्त भारी-पग तोरण की ओर चले
थे बूँद दो राजीव नयनों की कोर ढले।

देखा—
सैन्य - सैलाव सा,
उमड़ रहा सिकता की छाती पर ।
कोटि कोटि कल्पों से
तृषित मरु - अधर दीन—
तृप्ति पायेंगे,
आज उन मेघों से,
व्याकुल जो बरसने को ।
ग़जनी के क्रोध-सिन्धु-वाष्प के रूपांतर,
जलधर, बन-शस्त्रधर बरसेगें—
सिकता की धरती पर।
डूबेगी वसुंधरा
शोणित के जीवन से ।
दुग्ध के पेय पुरुप—
शेषनाग,
रक्त-पान करने को विवश से होंगे,
और—
खण्ड-खण्ड होगी वह
प्रतिमा शिवास्था की !

कलप उठा सोच मन,
काँप गया देख तन,
अगणित उल्काओं के झुंड सा—
अरि कटक ।

बूढ़े कलेवर में
उबल पड़ा देश-प्रेम ।
तोरण से नीचे को
उन्मुख हो उठे पाँव ।

एकबार सोच उठा—
"राणा से पूर्व यह
नन्दिदत्त देगा शीश ।
ब्राह्मण के शोणित का
रोचन लगे—
रण - चण्डी के मस्तक पर,
धरती के मस्तक पर,
कालिख की भाषा में प्रणित—
इतिहासों के पन्नों पर,
अक्षर पर ।
राजगुरु होते है—
रण - गुरु, शक्ति - गुरु, धर्म - गुरु,
सिद्ध मै करूँगा,
कर लेके करवाल, युद्ध - बीच ।"

मीच दृग,
पूज उठा अंतर में—
शिव का रौद्र रूप, ब्रह्म-पुत्र नंदिदत्त,
देख जिसे देवा-सुर काँपे थे।

देखा—
जी भर देखा, फिर—
वह अभूतपूर्व मेला सा,
घोघागढ़ प्राँगण में वीरों का।
निर्निमेष देखा—
नरों ने, किन्नरों ने,
सत्ताइस नक्षत्रों ने,
तैंतीस कोटि देवों ने,
दशों दिशाओं ने,
नवग्रहों ने,
सप्त ऋषियों ने,
तल ने, अतल ने,
महातल तलातल ने,
सोलह कलाओं,
और सोलह श्रृँगारों ने
स्वयं नदिदत्त ने,
सजे हुए रण-हेतु,
वीरों के रूपों को
अपलक हो देखा।

ठहर गया भावोद्रेक,
आया दायित्व याद।
लौट पड़ा वृद्ध पुरुष—
भारी तन, भारी मन लिये हुए।
आ रही पास, महमूद की सेना का—
देने संदेश, मुड़ा।
हाहाकार जागा,
भावों से कर्म जुड़ा।

समरांगण

दे बहक रहेगजराज आँधियों को बाँधे,
बलबला रहे थे ऊँट-रेत-मैदानों में।
हय की पूछों से आग बरसती थी जैसे–
लावा बिखराता ज्वालागिरि उद्यानों में।

समराँगण

तमतमा रहा मार्तण्ड शून्य के आँगन में
बालूका - वगूले आसमान पर छाते थे।
जो लिखा अभी तक रश्मि-कलम से सविता ने—
उस ज्योति-पत्र के पृष्ठ भग्न मंडराते थे।

उन्चास पवन आपत्तिकाल का बिगुल लिये
हर जड़-चेतन के कान फूँकता जाता था।
हिनहिना रहे महमूद-सैन्य के घोड़ों का—
वह महाघोष, ज्यो साँप सूँघता आता था।

हर दिशा सशंकित थी आने वाले पल को
हर कण नव-सिहरन लिये व्यथा में डूबा था।
कहते है जिसको भाग्य, परिस्थिति का अन्तर,
आने वाली संध्या का आँचल ऊबा था।

बढ़ रहे धधकते अँगारे धीरे-धीरे,
बापा के गढ़ पर नर-वीरों का पहरा था।
बूढ़ी प्राचीर - निगाहों के आगे डट कर—
बाँसठ हज़ार अरि का पड़ाव आ ठहरा था।

दो तलवारें, लगता था, रवि को काटेंगी,
शोणित से प्राची - भाल लजाया जायेगा।
जो रहे हिमालय से ऊँचा, ऐसा पर्वत—
मानव - लाशों से यहाँ उठाया जायेगा।

लाक्षणिक अर्थ ताण्डव का यहाँ रूप वरकर—
लास्यों का संतरण भाव उपजायेगा।
दो जाति, धर्म, उद्देश्य, लड़ेंगे खेतों मे—
इतिहासों की छाती - विष घोला जायेगा।

यह सोमनाथ - मंदिर-ध्वज तक बढ़ती छाया
पथ के पहाड़ से टकराकर ही बिखरेगी।
शिव की आस्था में डूबी केहरि की टोली
सीता सी अग्नि-परीक्षा में ही बिखरेगी।

तरुणाई पावक-ज्वाला के आलिंगन में
अगणित सर्पों के दसन प्यार में पायेगी।
भारत - रजपूती - परम्परा के आँगन में—
क्या फिर से जौहर - सेज सजायी जायेगी ?

यह प्रश्न बड़ा होता जाता था साथ-साथ
ज्यों-ज्यों ग़ज़नी की सेना बढ़ती आती थी।
उफनाते हुए महोदधि का आगे बढना—
उस महामिलन की तस्वीरे खिच जाती थीं।

सहसा देखा, ग़ज़नी-सेना निज-मार्ग बदल
घोघागढ बायें छोड़, रेत की ओर बढी।
वह 'तिलक' इधर लेचला साथ कर-श्वेत-केतु,
यह देख त्योरियाँ बापा की थी तुरत चढ़ी।

"महमूद चाहता नहीं युद्ध लड़ना तुमसे,
उस की आँखों में सोमनाथ का नक्शा है।
सम्मान तुम्हारी गौरव-गाथा को देने—
चौहान ! तुम्हारे गढ़ को उसने बख्शा है।"

'मेरे जीते, जा पाये जीवित सोमनाथ !
बोलो 'जय एकलिंग', घेरो, बढकर मारो।
मेरे रण - वीरों यही समय हहरा टूटो—
शिव-प्रतिमाओं का शत्रु सैन्य दल सँहारो।'

रावल की हाँकों में अवरुद्ध - प्रपात झरे
खुलगया किले का फाटक केसर-पाग चले।
बापा का घोड़ा मन की गति के साथ मुडा,
शिव के विष की अधरोंपर धरकर आग चले।

तलवारो पर किरनों का पानी लहरा गया,
उतरी थी रण के लिये बिजलियों की सेना।
अश्वों की टापों में भी जुगनू बसते थे——
किस तरह निपटता है देखो ! माथा-देना।

चतुरग सैन्य था गजनी का सरदार लिये,
हरवीर जवाँ-मर्दी का नया नमूना था।
इस ओर इरादा था बचकर आगे जाना
उस ओर वीरगति पाने को मन दूना था।

बढ़कर रोका रावल ने उमड़े सागर को,
मुड़कर तलवार लगा करने ग़जनी - पानी।
बिंध गये असंख्यों से, संख्या में हीन वीर,
शीशों के उपहार लगा देने नर दानी।

उस रावल की तलवार हवा को डसती थी,
अरि की सेना के वीर तड़प कर मरते थे।
मारता नाम का भय भी था आगे बढ़कर—
महमूद - सैन्य के वीर देख - तन डरते थे।

ग्यारह रुद्रों को अलग-अलग बलि दे जूझे,
घोघागढ के क्षत्री घमसान लड़ाई थी।
अनदेखे बाने दिखा रहे थे गजनवीय,
जिन की तलवारों के घर नित - पहुनाई थी।

ढालें, तलवारों का गुमान दुलराती थी,
प्रत्यंचा, तूणीरों के गौरव अधर सिये
भाले, भुजदण्डों के पौरुष - राखी बाधे—
बर्छी, रण-चण्डी हुई वारुणी विकट पिये।

थे बहक रहे गजराज आँधियों को बाँधे,
बलबला रहे थे ऊँट, रेत - मैदानों में।
हय की पूछों से आग बरसती थी जैसे–
लावा बिखराता ज्वाला-गिरि उद्यानों में।

थी एड़ी से चोटी तक की, ताकत कर मे,
दोनों पालों के वीर, जोश में डूबे थे।
हर की दुधार की आँखों में बैरी का सर–
मर मिटने को इन्सान हुए मन्सूबे थे।

रावल का घोड़ा पैदल के मस्तक पर चल,
हय के सवार के ऊपर टॉप बजाता था।
पाया घुड़सालों मे जितना दाना-पानी–
उसका करता गुणा, लब्धि तक जाता था।

पड़ता था मारुत को भी कुछ पीछे चलना,
थी घोड़े की गति से, दल में खलभली मची।
तलवार मचल कर बापा की सागर जल में–
थी ज्वारों के काँधों पर तिरती पार चली।

केसरिया पगड़ी पर शोणित की बूँदें थीं
गोरी दाड़ी थी भिगो रही सूखी छाती।
अस्सी बसत का ताप वहाँ पर छाया था,
था भेज रहा यमलोक ग़जनियों की पाती।

उस ओर तडप महमूद रहा चौहानों में,
जिस की वारों का काट न खोजे मिलता था।
बुलबुले मेटता बढ़ा जिधर घोघाबापा—
पौरुप का सीना सिह देख कर खिलता था।

शैतान नहाया हो शोणित के सागर में,
महमूद, रूप से हीन, भयावह लगता था।
मुट्ठी में बन्दी प्रकाश तूर के जलवे का—
ललकारों से सेना में ज्वाला भरता था।

काबुली कबीले के घोड़े टापो खेले,
बापा का दल भी जूझ रहा था खेतों में।
सूरज उफना कर बरस पडा था धरती पर,
मिट रही एक जागीर समय की रेतो में।

महमूद और बापा आ सम्मुख टकराये,
आगई धरित्री सूरज की गती को रोके।
'जै-एकलिग' 'अल्ला-अकबर' दोनों गर्जे,
खिच गई वार की धारा,कौन किस को टोके ?

गर्जा चौहान-वंश बढ़कर, कोनें काँपे,
प्रतिउत्तर में महमूद लिये ललकार मिला।
पलकें मुँदते ही दोनो शूर निहाल हुए,
दो युद्ध सिद्ध योधाओ से इतिहास हिला ।

था बापा के नाती की उम्रों का ग़जनी,
जिस की तलवारों का झण्डा लहराता था।
रावल-राणा का वृद्ध कलेवर आयु शिथिल—
झंझावातों का धरे वेग हहराता था।

"किस लिये मौत के मुँह में घुसने को आये
बापा! जीवन से क्या इतना तुम ऊब गये?
क्या नहीं सुना था तुमने मेरा नाम-धाम—
जो छोटी सेना ले भँवरों में डूब गये!"

"ज़िंदगी मौत के चंगुल से कतरायी थी,
इसलिये घेरना पड़ा मुझे महमूदों को।
भारत का चप्पा-चप्पा शीश नवाता है,
मै काल-रूप, बड़वानल तुर्क-सपूतों को।

छोटी डोंगी करती है सागर आर-पार,
मत भूलों-नाविक बड़वाओं में जीता है।
हो जिसका जन्म महोत्सव शोणित में डूबा—
मै वही अंश, जो अरि का गौरव पीता है।"

घोडे की खीचे रास, लिये तलवार नग्न
बोला बापा, क्यों तोड़ रहा प्रतिमाओं को।
किस लिये गुर्ज तेरी उठ रही शिवालों पर,
क्यो भेंट रहा तू दुष्ट देव- उपमाओं को।"

कर अट्टहास, गजनी-अमीर बढ़कर बोला—
"मै मुक्त कराऊँगा वन्दी विश्वासों को ।
पत्थर की प्रतिमा नही खुदा का रूप-धाम—
मै चाह रहा बदलो आस्था- आकाशों को ।"

रावल ने कहा, ब्रह्म को हम प्रतीक देकर,
मानव-जन-जीवन के समीप ले आये है ।
तुमने प्रेरणा ली जलवो के माध्यम से—
इन प्रतिमाओं से हमने वे स्वर पाये है ।

भारत का धर्म सनातन है, उद्भूत नही,
यह कभी मिटेगा नही गुर्ज-तदबीरों से ।
इसका विकास शशि-किंजल्कों सा प्रभा-पूर्ण,
स्लाम नही, जो फैला-तीरों, शमशीरों से ।"

'ये अर्थ-वर्ण, मानव को नही बाँट सकते,
सब है समान, उस महाशक्ति की नज़रों में ।
तुम भारत के लोगों ने रची जातियाँ है,
तेंतीस कोटि के भेद ख़ुदा के नगरों में !

है स्लाम नही फैला जग में तलवारों से,
जो वर्गवाद से त्रस्त, इसे अपनाते है ।
जो तुम जैसे अंधे-विश्वासी, बुतपरस्त,
हम उन की डयोढी अलख जगाते जाते है ।"

"ईश्वर विश्वासों की आँखों का नन्दन है,
हर आस्था अँधी है प्रारूप-प्रतीकों में ।
है यही भूमि जिसने देवों को जन्मा है,—
हम जीते वेद-पुराण। युक्त सलीकों में ।

तुम क्या जानो उस सोमनाथ की सत्ता को,
जो रावण का दनुजत्व राम हो दलता है।
आ गया तुम्हारे उन्मादों का अंत समय,
हर ढलते वाला सूर्य उबल कर चलता है।"

बल पड़ा भाल की रेखाओं में गजनी के
भूरी पुतली का व्यास, श्वेत से लाल हुआ। ।
हुँकार भरी, घोड़ा तड़पा, तलवार बही—
बच गया वार, जैसे पारे ने थाल छुआ ।

इस तरफ मृत्यु औ महाप्राण टकराये थे
पड रहीं भावरें, प्रत्यंचा से तीरों की ।
भाले से बर्छी उलझ रही थी कहीं-कहीं,
थी गुर्ज कर रही अगवानी कही शमशीरों की ।

चरमरचर धनुष लगे करने हौदे ऊपर,
सनसनसन तीर दौड़ते थे मैदानों में ।
थी छपक-छपक बज रही दुधारी खेतों में—
बोये जाते नर-मुण्ड रेत-वीरानों में ।

बिजली बादल से टकरायी, धरती, डोली,
सावन की झड़ी लगी पड़ने प्रासाद ढहे।
बापा-भाले के आगे था महमूद —
उस समय मनोभावों की गाथा कौन कहे !

बिंध गया अंग रण-पंचानन का भाले से,
दूना आवेश समेटे ग़ज़नी टूट पड़ा।
खिंच गया शून्य का पल नियति-प्रकोष्ठों में,
उपवीत समय के कन्धों से ज्यों छूट पड़ा।

महमूद ग़ज़नी के शरीर का गिरा रक्त,
घोघागढ़ की घटती हरियाली जाता था।
घायल था बापा-रावल पूर्ण प्रहारों से,
उसके शोणित शिव-लिंग नहाय-जाता था।

निचुड़े थे जवाकुसुम चितकबरे हय-ऊपर,
होठों के अन्दर का नमकीला स्वाद हुआ।
थक गया बाजुओं का पौरुष लड़ते-लड़ते,
तपते सूरज का ढलता सा उन्माद हुआ।

बापा का घोड़ा वारों से घायल बोझिल,
अपना अंतिम आवेश लुटाता जाता था।
दुश्मन को थकते देख, गजनी का पौरुष -
अपने अंतस की भूख मिटाता जाता था।

थे उधर उखड़ते पैर सैनिकों के रण में
महमूद अचानक घबरा कर पीछे भागा।
संगठन लगा करने फिर भगती सेना का—
राणा -बापा का थकता सा साहस जागा ।

ललकार ठाकुरो को दे पीछा करने को
चू रहे घाव ले सिह चटकता जाता था।
ऐसा लगता था, ताण्डव-रव के साथ-साथ—
काली का खप्पर ले भैरव इतराता था ।

मन में विचार, थी कौध खड्ग की धारा में,
गति में तुरंग के मानचित्र शरमाते थे ।
चिर प्रहवान विद्युत पीछे पड़ सकती थी,
लेकिन वीरो के बार पार कर आते थे ।

गणितज्ञ भूल कर सकता था सोपानों में,
खिच गये दण्ड के तीर न पीछे पड़ते थे।
ज्यामित-प्रहेलिका का हल होता जाता था—
जैसे-जैसे कर सिंहनाद नर बढ़ते थे ।

तोरण के तीरंदाज़ उतर पीछे धाये,
अब नही शेप था कोई गढ़-रखवार यहाँ ।
फिर से तलवारें टकरायी, भाले बरसे,
पलकें झपते कट गये सूर-सरदार यहाँ ।

तज दिया साथ घायल हय ने रण-प्रांगण में,
था पैदल ही रह गया ठाकुरों का पानी।
घिर गया हजारों तलवारों की छाया में—
बापारावल, नर सोमनाथ का सेनानी।

सहसा पहाड़ का मस्तक भूपर दुगुन गया,
रुक गया समय अहनी गाथा लिखते-लिखते।
मुह छूपा गया सूरज गोधूली के आँचल—
मिट गये आठ सौ सूरवीर दिखते-दिखते।

नम आँखों में इतिहास लिये मारुत रोया,
हो गया वंश का अंत, सितारों से पहले।
पछियों विना सूना था नीलम का आँगन—
जल उठी मशालें, गिरे निशानों के पहले।

बजगया तूर्य, ग़ज़नी-दल में विजयोल्लास,
'अल्ला-हो अकबर'-गूँज उठा आकाशों में।
जाकर प्रभास लूटेंगे मदिर-सोमनाथ—
थी दौड़ गयी, आशा-बिजली विश्वासों में।

था जहाँ गरजता बापा, गिद्ध उमड़ते थे,
नर-मुण्डों का उपहार लिये रण-सोया था।
था काट रहा नैशांधकार दिन की फसलें—
गौरव का मन, इस जगह, यही पर रोया था।

अंतःपुर

चंदन का धुआँ--
तन की सड़ाँध से अकुलाकर भागा।
बाँसों के बन सा--
अंत:पुर चटकने लगा।

अंत·पुर

बाँह में बाँधे बधिर आकाश-
यामिनी का दर्प,
मानवों की साँस में
जिस तरह डूबा हुआ
महतत्व का अस्तित्व ।
शेष ऊपमा थी रुधिर में
लड़ रहे थे रुण्ड,
बाह्य से रीता उड़े-
मन कल्पना के झुण्ड ।

झर रही आकाश-आँचल से-
प्रतिच्छाया,
उभरते बिम्ब-
नयन-ज्वाला-गिरि उगलते
जो धड़ों से दूर;
उनमे नही था भाव-
दुर्गा के सिह के नीचे-
दबे, मधु-कैटभ के चित्र सा ।

चाँद की कमलों-सँग तैरती परछाँई,
पुरइन सा खिला-खिला-
स्वाभिमान !
और-
मनिया के चिन्ह पर
वीर-भाव-शोणित की रोली,
कलश से दूर गिरा-दिया ।

एक पत्थर-
जिसके अन्दर भी आँखे न थी,
स्पदन न था,
विराट न था,
भैसा ही अचेत-
जैसे बोये हुए बीज से
ऊसर या रेत ।

पत्थरो की निर्मित दीवालें,
इतिहास काले अक्षरो में
अब संजोये ही जियेगा-
यह भयानक दृश्य ।
पिड का फिर से बिखरना,
तत्व होना ।
जूझे हुए संस्कार…!

संजय-
हथेली से
ढाँक मुख-
चीत्कार करता,
टूट गये बिम्बों के साये।
गर्वोक्तियाँ—
मिट्टी के बर्तन सी टूट कर,
बिखर गईं !

केतु—
खेतों में गिरा,
तोरण से उतर गया।

शब्दहीन,
किंकर्त्तव्यविमूढ़,
उत्तरदायित्व के बोझ से दबा,
सहस्रमेरु पैरों से बाँधे,
अतस में दावा,
आँखो मे बड़वानल लिये हुए,
नंदिदत्त,
उतर चला नीचे को तोरण से
श्लथगत,
भाव-रक्त-लथपथ।

बाहर-तलवारों से
तीरों से, भालों से,
देखा था कटते हुए स्वजनों को।
अंदर थी—
अपूर्व शृंगार किये—
वीर-वर ललनायें,
क्वाँरी-वय-ललनायें,
पल-पूर्व-सुहागिनें,
लेकिन अब विधवायें !
आँखो मे कटार सा काजल था,
माथे थी मृगाँक सी बिंदी,
ग्रीवा में रति की आकाँक्षा के आभूषण.
गोदी में प्रियतम-पार्थिव-चिह्न,
आँचल में धडकन उमंगों की,
धड़कन में कम्पन विसर्जन का,
हाथों में मृत्यु के वीरन के रोचन की थाली !

सन्मुख थी—
चदन युक्त,
धू-धू कर जलती सी—
जौहर की ज्वाला,
दृष्टि के गवाक्ष में
समय का पाला।

नूपुर-किंकणियों के गुंजन थे
खोये से रोदन की हिचकी में।

बजने लगे जौहर के बाजे,
होने लगी अग्नि की परिक्रमा।
स्मरण हुतात्माओं का—
वेद-मंत्र बन हो गया
घोघागढ़ प्रांगण में।
काँप गया नंदिदत्त,
बिखरने लगे धैर्य के ताने,
टूटने लगे कर्त्तव्यों के बाने!
अर्ध विक्षिप्त सा
चीख उठा—
"कालकूट!
कौन से पाप का देता फल मुझे आज?
जानता जो अंत का इतिहास,
मैं स्वयं ही मेट देता
अहंम का आकाश

जिनके अलक्तक की लाली से
अंत.पुर रंजित था,
अट्टालिका सुहागिन थी,
जिन की किलकारी से भरा हुआ आँगन था,
जिनके दो धागों से—

अम्बर था बँधा हुआ,
आज अविनाशी-विनाश की ज्वाला में
माँ के आशीष-मेघ—
करतल भी झुलसेंगे।
कौन कल जन्मेगा—
घोघा सा वीर-पुत्र,
वंश-वेलि बैरी की
पतझर कर देने को ?
बोलो हे सोमनाथ !
बोलो हे महाकाल !
मैंने क्या किया है पाप ?
मैंने क्या किया था पाप ?

शत्रु की अपावन परछाँईं से बचने को
अग्नि की गोद—
एक सबल दिखाती है, मुझको भी।
···आत्महत्या ?
व्यर्थ का भाव-अर्थ,
आत्मा कब मरी है !
मारेगा कौन उसे,
सृष्टि से पूर्व और अंत के बाद भी
रह रही सत्ता को !

इतना सब देखा,
देखूँगा कैसे अब
तड़ित-तड़ाक़ से
टूटती दीवारों को
राख-तन होते, इन
अपने परिवारों को !"
समय प्रधान है,
प्रवल है भावी भी ।
आँख होते देख ले जो—
है वही तू भाग्य,
प्रारब्ध का अकल्पित,
अमिट अंक ।

लोचन सुखातीं,
शेषफन को कँपाती हुईं
पैठने लगी नारियाँ
अग्नि की गोद में ।
आस्वास्थ हो राजगुरु
अग्नि में पैठती
अगणित सीताओं को
देने विदा लगे ।
चंदन की लपटों में
पंचतत्व जलने लगे
प्राण-तन रहते ही ।

चंदन का धुआँ—
तन की सड़ाँध से अकुलाकर भागा।
बाँसों के बन-सा—
अंतःपुर चटकने लगा।
मांसल शरीरों की
भीषण चीत्कारों से—
वातावरण
अगणित श्मशानों को मोल गया !
घुटने लगा धूम्र की बाँहों में
प्राण आकाश का।

महल-प्राचीरों को ध्वंस करती हुई
चिता की लपटों ने
विजयोल्लास में डूबे हुए
ग़ज़नी के वीरों का
हौसला निचोड़ दिया।

महमूद ने गढ़ में प्रवेश कर देखा—
प्राणवान कोई भी वस्तु नही शेष थी।
जहाँ-तहाँ बिखरे थे
भग्न-स्वप्न से स्वर्ण-रत्न,
निडर खुले कपाट,
निकल गये दाँतों के कटे हुए होठों से—
जलहीन कूप,
और गिरा हुआ केतु।

थे आग के झरने बरसते जिन आँखों से
वे ही राजीव-नयन !
अँजुलि भर,
तरल हीरक बिखेर उठे ।
महमूद ने अभूतपूर्व सिहरन भर देखा—
आस्था के सीने पर जलती चिताओ को ।

शौर्ययुक्त धीरज का लोक—
लहरो के थपेडों से
डोंगी सा काँप गया ।
एक नि:श्वास भर
ग़जनी का प्रतीक-विध्वंसक,
अपने से कह उठा—
'इतना है महान्
मूल्यवान, सोमनाथ ?
वंश का वश
जिसके लिये
जीते-जी राख हो सकता है !
तो है प्रणाम—
मानव-विश्वास की
पाहन-प्रतिमाओ को,
···नहीं, कदापि नही,
केवल हुतात्माओं को ।'

नंदिदत्त शेष दायित्व के पूर्ण हेतु
जाकर छुपा था, तोरण-प्रकोष्ट में ।

मंदिर प्रतिमाओं को तोड़,
लाद कर धन से अश्व,
बापा की कीर्ति को
मस्तक झुकाता हुआ,
वीर-ललनाओं का गौरव सराहता,
ग़ज़नी-अमीर-महमूद
बढ़ा आगे को
लक्ष की प्राप्ति को ।

भर गया फिर से—
शून्य से, आँगन प्रासादों का ।
मद्धिम पड चुकी थीं
जौहर-चितायें,
ज्वर में अचेत रोगी के क्रंदन सी ।
लुंठित से पड़े थे—
वास्तुकला के ललित पुँज,
वैधव्य के शाप से टूटी ज्यों चूड़ियाँ ।

बाहर निकल,
दीर्घ निःश्वास ले,
राजगुरु नंदिदत्त—

विस्फरित नेत्रों से
देख रहा गढ़ को,
गढ़ की अन्तेष्टि को।
रोम रोम प्रतिफल की
कीलों से वेध कर
विश्वकर्मा समय आगे बढ़ा।
शिव का तीसरा नेत्र
जैसे बापा के राज्य पर ही
खुलना था।
धर्म-अनुरक्ति के भाल का चंदन
यहीं पर धुलना था !

लड़खड़ाते पैर,
शब्द से हीन वाणी,
पथरायी सी दृष्टि—
ले चला, वह विप्र, लाशों के विजन में।
किस काया का हाथ
शीश किस धड़ का था ?
कौन कह सकता था !

मृत्यु के चरणों पर
चढ़े हुए सुमनो में
खोज रहा था वृद्ध—
वीर-प्रवर बापा की काया को।

रौंद रहे थे पैर
अनजाने अपनों की
खण्ड-खण्ड काया को
अपने ही पावों से ।
बर्छियाँ आँखों की पुतली में
धँसती थीं,
देख-देख परचित से चेहरों को ।

सहसा, दाढ़ी और पगडी से
पहचानी जा सकी
रावल की [illegible] या ।
पास ही पड़ा था
अपने हाड-माँस का
एक मात्र [illegible]ला भी ।
किन्तु देख बापा की मिट्टी को
फूट पड़ रहा सहा धीरज का बाँध,
जल-भरे गुब्बारे को
छू गया—जैसे सुई का काँध !

कैसे पराजित हुआ
जो था अजेय ?
कैसे वह मारा गया
मृत्यु जिससे घबड़ाती थी ।